अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

हिंदी लोकगीतों में स्त्री जीवन का चित्रण

दीपा रानी
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी)
राजीव गांधी राजकीय महाविद्यालय, साहा (अम्बाला)।

सार:-

हिंदी लोकगीतों में स्त्री की स्थिति बहुआयामी है। वे एक ओर सामाजिक बंधनों में बंधी हुई दिखाई देती हैं, तो दूसरी ओर उनकी आवाज इन गीतों में एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में उभरती है। इन गीतों के माध्यम से हम स्त्री के मनोविश्व, भावनात्मक संघर्ष, श्रम, प्रेम और सामाजिक असमानताओं को समझ सकते हैं। नारी विमर्श की दृष्टि से लोकगीतों का अध्ययन स्त्री साहित्य और समाज की वास्तविक स्थिति को जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है। आज भी डिजिटल युग में लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियाँ अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई हैं। सोशल मीडिया और यूट्यूब जैसे मंचों पर लोकगीतों की प्रस्तुति यह दिखाती है कि कैसे ये गीत समय के साथ बदलते हुए भी स्त्री जीवन के अनुभवों को सहेजे हुए हैं।

1. प्रस्तावना:-

हिंदी लोकगीत भारतीय समाज की आत्मा हैं। ये गीत न केवल सांस्कृतिक स्मृति के वाहक हैं, बल्कि आमजन के जीवन, अनुभव और भावनाओं का सजीव दस्तावेज़ भी हैं। इनमें स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है—कभी गायिका के रूप में, कभी पात्र के रूप में। इन गीतों में स्त्री के सुख-दुख, पीड़ा, प्रेम, सामाजिक बंधन, संघर्ष और आकांक्षाएँ अत्यंत भावनात्मक और यथार्थ रूप में चित्रित होती हैं। इनमें समाज की परंपराएँ, विश्वास, भावनाएँ और जीवन की विविध अवस्थाओं का जीवंत चित्रण मिलता है। विशेष रूप से स्त्री जीवन का जो चित्र लोकगीतों में उभरता है, वह न केवल सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब है, बल्कि स्त्री की संवेदनाओं, इच्छाओं, संघर्षों और सांस्कृतिक भूमिकाओं को भी अभिव्यक्ति देता है। स्त्री जीवन के विभिन्न चरण—जन्म, यौवन, विवाह, मातृत्व, सास-बहू संबंध, विरह, श्रम और वृद्धावस्था—लोकगीतों में भावनात्मक गहराई के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, सोहर गीत जन्म के अवसर पर गाए जाते हैं, जिनमें पुत्र-प्राप्ति की कामना के साथ-साथ पुत्री के जन्म पर समाज की मिश्रित मानसिकता का भी चित्रण मिलता है। वहीं बन्ना-बन्नी गीतों में विवाह की तैयारी, बेटी की विदाई और उससे जुड़ी मां की वेदना अत्यंत मार्मिक रूप से अभिव्यक्त होती है।

लोकगीतों में स्त्री की भूमिका सिर्फ एक घरेलू स्त्री तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक श्रमिक, एक प्रेमिका, एक विद्रोही और एक विचारशील इकाई के रूप में भी उभरती है। विशेषकर विरह गीतों में प्रेम, पीड़ा, सामाजिक बंधनों और स्त्री की आत्म-अभिव्यक्ति का गहन चित्रण मिलता है। लोकगीतों में स्त्री न केवल प्रेम में खोई नायिका होती है, बल्कि अपने हक और सम्मान के लिए संघर्ष करने वाली नारी भी होती है। विवाह के पश्चात ससुराल में स्त्री की स्थिति और अनुभवों को बिदाई गीत अथवा गारी गीतों में देखा जा सकता है, जहाँ वह कभी पति के प्रेम से गद्गद होती है, तो कभी सास-ससुर की उपेक्षा से व्यथित। इन गीतों में उसका आत्मसंघर्ष, भावनात्मक द्वंद्व और सामाजिक अपेक्षाएँ स्पष्ट रूप से झलकती हैं।

2. लोकगीतों का स्वरूप और वर्गीकरण:-

2.1 ऋतु गीत: फाग, सावन गीत:- हिंदी लोकगीतों में ऋतु गीतों का विशेष स्थान है, जो प्रकृति और मानवीय भावनाओं के गहरे संबंध को दर्शाते हैं। फाग, चैती, कजरी, सावन आदि गीत वर्ष के विभिन्न ऋतुओं के साथ गाए जाते हैं और उनमें विशेष रूप से स्त्री के मनोभाव, प्रेम, विरह और उल्लास को अभिव्यक्ति मिलती है। फाग गीत होली के अवसर पर गाए जाते हैं, जिनमें प्रेम, हास्य और सामाजिक उत्सव का रंग होता है। स्त्रियाँ रंग खेलते हुए खुलकर गाती हैं:- "फागुन आयो रे, रंग बरसाओ रे, पिया संग खेलूँ होरी..."(रामकुमार वर्मा, हिंदी लोकगीतों में नारी) यह गीत प्रेम और उमंग का प्रतीक है। सावन गीत वर्षा ऋतु में गाए जाते हैं, जब हरियाली छा जाती है और नवविवाहिता स्त्रियाँ मायके जाने की इच्छा करती हैं। सावन स्त्रियों के लिए भावनात्मक ऋतु होती है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

"काहे को ब्याही बिदेस, रे ललना..."(रामकुमार वर्मा, हिंदी लोकगीतों में नारी) यह कजरी गीत स्त्री के विरह और मायके की याद को दर्शाता है। ऋतु गीतों में स्त्री का लोक रूप अत्यंत कोमल, भावुक और प्रकृति से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। वे अपने गीतों में ऋतु के सौंदर्य के साथ अपने हृदय की बात भी कहती हैं, जिससे ये गीत केवल मौसम का नहीं, मन का भी चित्र बन जाते हैं।

2.2 संस्कार गीत: विवाह, जन्म, मुंडन, छठ:- हिंदी लोकसंस्कृति में जीवन के हर पड़ाव पर गाए जाने वाले संस्कार गीत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये गीत केवल रस्मों का हिस्सा नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक चेतना, आस्था और भावनाओं के वाहक होते हैं। जन्म से लेकर विवाह तक और तदोपरांत जीवन से जुड़े अन्य संस्कारों में स्त्रियाँ मिलकर जो गीत गाती हैं, वे स्त्री समाज की सांस्कृतिक धरोहर हैं। जन्म के समय गाए जाने वाले सोहर गीतों में नारी की प्रसव पीड़ा, नवजात के आगमन की खुशी और कुल की बढ़ती समृद्धि झलकती है। उदाहरण:- "अचवा में आयलें ललना राजा जी, बाजे नगाड़ा..."(आशा पाण्डेय, लोक साहित्य और स्त्री विमर्श) मुंडन जैसे संस्कारों में बच्चे के विकास की कामना और परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा को स्वर मिलता है। विवाह के समय गाए जाने वाले गीत – जैसे बधावा, गाली, कजरी – स्त्री के विदा होने की वेदना और सामाजिक रीति-नीति का सुंदर चित्रण करते हैं। उदाहरण:- "बाबुल मोरे नैहर छूटो ही जाए..."(आशा पाण्डेय, लोक साहित्य और स्त्री विमर्श) छठ जैसे पर्वों पर गाए जाने वाले गीतों में व्रतधारी स्त्रियों की आस्था, पारिवारिक कल्याण की कामना और सूर्य देवता के प्रति समर्पण दिखाई देता है। इन गीतों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने सामाजिक अनुभव, भावनाएँ और सांस्कृतिक ज्ञान अगली पीढ़ी को सहज रूप में सौंपती हैं। अतः संस्कार गीत लोक परंपरा की अमूल्य थाती हैं।

2.3 प्रेम गीत: विरह, मिलन, सख्य भाव:- लोकगीतों में प्रेम एक गहन, सजीव और आत्मिक अनुभूति के रूप में उभरता है। इनमें मिलन की खुशी, विरह की पीड़ा और प्रेम का पवित्र, सत्य भाव प्रकट होता है। विवाहपूर्व प्रेम की लज्जा हो या विवाहोपरांत विरह, लोकगीतों में स्त्री हृदय की कोमलता मुखर होती है। उदाहरण:- "पिया के मिलन की आस लागी, नैनन में बसा लियो साईं..."(मोहनलाल वियोगी, भारतीय लोक साहित्य और नारी) यह पंक्ति प्रेम की उत्कंठा और समर्पण को दर्शाती है। विरह गीतों में प्रतीक्षा, तड़प और स्मृति से भरा भाव संसार रचा गया है, जो प्रेम को लोकजीवन का अनिवार्य तत्व बनाता है।

2.4 श्रम गीत: खेती, चक्की, कढ़ाई करते समय गाए जाने वाले गीत:- लोकगीतों में श्रम गीत विशेष स्थान रखते हैं, जो स्त्रियों द्वारा खेती, चक्की पीसते, कढ़ाई-बुनाई करते समय गाए जाते हैं। ये गीत श्रम की थकान को कम करते हैं और सामूहिकता व मनोविनोद का भाव उत्पन्न करते हैं। स्त्रियाँ काम करते हुए जीवन की बातों, दुःख-सुख, प्रेम, विरह और सामाजिक अनुभवों को इन गीतों में पिरोती हैं। उदाहरण: "चक्की चलावे मोरी सजनी, पिया परदेस गइले..."(आशा पाण्डेय, लोक साहित्य और स्त्री विमर्श) यह गीत श्रम में डूबी स्त्री की विरह वेदना को दर्शाता है। श्रम गीतों में लोकजीवन का यथार्थ और स्त्री की संवेदनशीलता झलकती है।

3. स्त्री जीवन के विविध आयाम लोकगीतों में

3.1 बाल्यावस्था से विवाह तक :- बालिका के जन्म पर गाए जाने वाले सोहर गीत जहाँ एक ओर पुत्र-जन्म की अपेक्षा को दर्शाते हैं, वहीं दूसरी ओर पुत्री के जन्म पर मां के मन की द्वंद्वात्मक स्थिति को भी अभिव्यक्ति देते हैं। बाल्यावस्था में लड़की को 'कन्या' के रूप में देखा जाता है, जिसे पालन-पोषण के साथ-साथ विवाह योग्य बनाने की प्रक्रिया लोकगीतों में स्पष्ट होती है। चुनरी, लुगरी, गुड़िया जैसे प्रतीक गीतों में उसकी मासूमियत, खेल और घरेलू प्रशिक्षण का वर्णन मिलता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, विवाह की चर्चा और समाज की अपेक्षाएँ गीतों में उभरने लगती हैं। बन्ना-बन्नी या मांगलिक गीतों में बालिका की सुंदरता, शील और अच्छे वर की कामना की जाती है। वहीं बिदाई गीतों में एक ओर मातृ-पक्ष की व्यथा है, तो दूसरी ओर बालिका की मनोदशा—डर, आशा और उलझन—भी अभिव्यक्त होती है। यह चरण लोकगीतों में स्त्री जीवन की सबसे कोमल, भावनात्मक और निर्णायक अवस्था के रूप में उभरता है।

3.2 कन्या की कोमल भावनाओं का चित्रण:- हिंदी लोकगीतों में कन्या की कोमल भावनाओं का अत्यंत संवेदनशील और हृदयस्पर्शी चित्रण मिलता है। बचपन से ही वह समाज की अपेक्षाओं, पारिवारिक संस्कारों और स्त्रीत्व की मर्यादाओं के बीच पलती है। लोकगीतों में उसकी मासूम इच्छाएँ, भावनात्मक सपने और विवाह संबंधी कल्पनाएँ बड़ी सहजता से प्रकट होती हैं। गुड़िया-

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

गुड़िया खेलते गीत, झूला गीत, और बन्नी के गीतों में बालिका की भोली मुस्कान, सहेलियों संग ठिठोली, रंग-बिरंगे वस्त्रों की चाह और सजने-सँवरने की आकांक्षा दिखाई देती है। वह अपने भावी जीवनसाथी को लेकर मन में कल्पनाएँ संजोती है, कभी संकोच से तो कभी उत्साह से। विदाई गीतों में जब कन्या अपने मायके से ससुराल विदा होती है, तब उसकी भावनाओं की गहराई लोकगीतों में आंसुओं की तरह बहती है—माँ-बाप का घर छोड़ने का दुःख, नए घर का भय और मन में उठते सवाल। इन गीतों में कन्या की संवेदनशीलता, प्रेम, डर, उत्सुकता और अपनापन एक साथ गुँथे होते हैं। इस प्रकार, लोकगीतों में कन्या केवल एक पात्र नहीं, बल्कि कोमल भावनाओं की जीवंत छवि बनकर उभरती है।

3.3 पिता और भाइयों के साथ संबंधों की मिठास:- हिंदी लोकगीतों में स्त्री के पारिवारिक संबंधों का चित्र अत्यंत कोमल, भावनात्मक और आत्मीय होता है। विशेषकर पिता और भाइयों के साथ उसके रिश्तों में जो स्नेह, सुरक्षा और अपनापन झलकता है, वह लोकगीतों की आत्मा बन जाता है। भाई-बहन के रिश्ते पर आधारित रक्षा बंधन और भैया दूज जैसे अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में बहन की अपने भाई के प्रति गहरी भावनाएँ उभरती हैं। वह भाई से रक्षासंवरण, उपहार और स्नेह की अपेक्षा करती है, तो वहीं भाई भी उसकी रक्षा और सम्मान की जिम्मेदारी निभाने का वादा करता है। इसी प्रकार, पिता के साथ संबंधों की मिठास कन्यादान, बिदाई, और सोहर गीतों में देखी जा सकती है। बेटी को पिता का सबसे प्रिय माना गया है—वह उसके लिए 'लाड़ली', 'राजकुमारी' होती है। विवाह के समय बेटी का अपने पिता से बिछुड़ने का दुःख, और पिता का भावुक होना, लोकगीतों में अत्यंत मार्मिकता के साथ प्रकट होता है। इन गीतों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री का अपने मायके, विशेषकर पिता और भाइयों से गहरा भावनात्मक रिश्ता लोक परंपरा का एक अभिन्न और सुंदर हिस्सा है।

3.4 विवाह की चिंता, दहेज, और पराया धन बनने की पीड़ा :- हिंदी लोकगीतों में स्त्री के विवाह से जुड़ी सामाजिक चिंताएँ, विशेष रूप से दहेज प्रथा और स्त्री के वस्तुकरण की पीड़ा, अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त होती है। इन गीतों में विवाह को केवल एक संस्कार नहीं, बल्कि आर्थिक लेन-देन और स्त्री के "धन" बनने की प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। गारी गीतों, बिदाई गीतों और मांगलिक गीतों में बार-बार यह चिंता उभरती है कि पिता को बेटी की शादी के लिए कितना खर्च उठाना पड़ेगा, कितने गहने और वस्त्र देने होंगे, वरपक्ष की माँगें कैसे पूरी होंगी। स्त्री स्वयं भी इन गीतों में कहीं-कहीं आत्मग्लानि और अपराधबोध से भर जाती है कि वह अपने पिता पर बोझ है। एक लोकगीत की पंक्ति है: "बाबुल मोहे मोल चुकायो, बैल-बग्घी बेची"(सुधा सिंह, लोकगीतों में नारी चेतना) यहाँ बेटी का दर्द झलकता है कि उसका विवाह उसके पिता के आर्थिक कष्टों का कारण बना। इन गीतों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री विवाह के अवसर पर केवल एक संस्कार की पात्र नहीं, बल्कि एक ऐसा माध्यम बन जाती है, जिससे सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक सौदे जुड़ जाते हैं। लोकगीत इस पीड़ा को सजीव और करुणा से भरपूर स्वर देते हैं। उदाहरण: "बाबुल मोरे नैहर छूटो ही जाए..."(सुधा सिंह, लोकगीतों में नारी चेतना) यहाँ "नैहर" के प्रति स्त्री का भावनात्मक लगाव व्यक्त हुआ है।

4. विवाह और ससुराल

4.1 सास-बहू संबंध :- हिंदी लोकगीतों में सास-बहू का संबंध सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो भावनात्मक, व्यंग्यात्मक और कई बार संघर्षपूर्ण रूप में उभरता है। बहू जब अपने मायके से विदा होकर ससुराल आती है, तो वहाँ का पहला रिश्ता सास के साथ होता है, और यही रिश्ता लोकगीतों में सबसे अधिक चित्रित किया गया है। गारी गीतों, झूमर और बिदाई गीतों में सास को प्रायः कठोर, बहू पर संदेह करने वाली और अधिकार जताने वाली स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वहीं बहू को भावुक, सहमी हुई, और कई बार व्यंग्य के माध्यम से प्रतिरोध करने वाली स्त्री के रूप में दिखाया गया है। उदाहरण स्वरूप एक गीत में बहू कहती है:- "सासु मोरी नार करे, देवरिया हँसे।"(नरेश मेहरा, हिंदी लोक साहित्य: स्वरूप और संरचना) इस पंक्ति में बहू की असहज स्थिति और पारिवारिक उलझन झलकती है। हालाँकि, कुछ लोकगीतों में सास-बहू के बीच स्नेह, अपनापन और समझदारी का भी चित्र मिलता है, जहाँ सास बहू को बेटी की तरह स्नेह देती है और बहू भी उसे माँ का स्थान देती है। इस प्रकार लोकगीतों में यह संबंध बहुआयामी रूप में सामने आता है—जहाँ संघर्ष है, वहीं सह-अस्तित्व की संभावना भी है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

4.2 पति के प्रति प्रेम, अधिकार, समर्पण :- हिंदी लोकगीतों में स्त्री का पति के प्रति प्रेम, अधिकार भावना और समर्पण भाव अत्यंत भावनात्मक और सजीव रूप में प्रकट होता है। विवाह के उपरांत पति उसके जीवन का केंद्र बन जाता है, और लोकगीतों के माध्यम से वह अपने प्रेम, पीड़ा, आशा और अधिकार का सहज और स्वाभाविक रूप से वर्णन करती है। विरह गीतों, कजरी, बिरहा, चैती और सावन गीतों में पत्नी का अपने पति के प्रति गहरा प्रेम, उसकी प्रतीक्षा, और दूरी के कारण उत्पन्न वेदना अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत होती है। एक प्रसिद्ध गीत की पंक्ति है—"पिया गए परदेस, मोरा मन ना लागे।" (नरेश मेहरा, हिंदी लोक साहित्य: स्वरूप और संरचना) इसमें पति की अनुपस्थिति में स्त्री की व्याकुलता झलकती है। इसी के साथ-साथ, लोकगीतों में स्त्री अपने पति पर अधिकार भी जताती है—वह चाहती है कि उसका प्रेम केवल उसी के लिए हो, और वह किसी दूसरी नारी से संबंध न रखे। यदि पति उपेक्षा करे, तो वह गीतों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध भी प्रकट करती है। स्त्री का समर्पण भाव इन गीतों में अत्यंत कोमलता से भरा होता है—वह पति के दुख-सुख में सहभागी बनती है, उसके लिए व्रत रखती है, और उसकी लंबी उम्र की कामना करती है। लोकगीतों के माध्यम से यह संबंध सामाजिक नहीं, आत्मिक रूप में प्रकट होता है।

4.3 पति के परदेश जाने पर विरह की वेदना:- हिंदी लोकगीतों में पति के प्रदेश (विदेश) जाने की स्थिति स्त्री जीवन की एक अत्यंत मार्मिक और संवेदनशील अवस्था के रूप में चित्रित की गई है। पति जब रोज़ी-रोटी की तलाश में परदेश चला जाता है, तब पत्नी का जीवन विरह, प्रतीक्षा और अकेलेपन से भर उठता है। इस भाव को लोकगीतों ने अत्यंत कोमलता और गहराई से व्यक्त किया है। विरह गीतों, कजरी, चैती, और सावन गीतों में पत्नी की पीड़ा, उसकी तड़प और मन की बेचैनी झलकती है। वह पति की याद में दिन-रात गिनती है, उसकी चिट्ठी, संदेश और वापस आने की राह तकती है। एक प्रसिद्ध विरह गीत में स्त्री कहती है —"सावन आयो रे, पिया नहीं आयो।"(नरेश मेहरा, हिंदी लोक साहित्य: स्वरूप और संरचना) यह पंक्ति दर्शाती है कि ऋतु का सौंदर्य भी उसे प्रिय के बिना फीका लगता है। इन गीतों में स्त्री का अकेलापन केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक भी होता है। उसे समाज की नज़रें झेलनी पड़ती हैं, उसकी असुरक्षा बढ़ जाती है, और जीवन निरर्थक-सा लगने लगता है। लोकगीतों के माध्यम से यह विरह एक स्त्री की गूढ़ संवेदना, गहन प्रेम और साहसिक प्रतीक्षा का प्रतीक बन जाता है, जो उसके चरित्र की आंतरिक शक्ति को उजागर करता। उदाहरण:- "पिया गए परदेशवा, छोड़ि गए नैहरवा..."(सुधा सिंह, लोकगीतों में नारी चेतना) इस गीत में स्त्री की विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण है।

4.4 मातृत्व और परिवार:- गर्भावस्था, प्रसव पीड़ा और माँ की ममता से जुड़ी पीड़ाओं और संवेदनाओं को लोकगीतों में अत्यंत भावुकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कभी वह बच्चे के लिए लोरी गाकर उसे सुलाती है, तो कभी उसके भविष्य की चिंता में व्याकुल दिखाई देती है। कई गीतों में यह भी दिखाया गया है कि माँ संतान के सुख के लिए अपने सपनों और इच्छाओं का त्याग कर देती है। परिवार में स्त्री माँ के रूप में केवल संतान की रक्षक ही नहीं होती, बल्कि वह पूरे परिवार को एक सूत्र में बाँधने वाली शक्ति भी होती है। उसकी ममता, सहनशीलता और करुणा पूरे परिवार को स्थायित्व प्रदान करती है। लोकगीतों में माँ के इस रूप का चित्रण भावनात्मक गहराई और आत्मीयता के साथ किया गया है।

4.5 माँ बनने का उत्सव और सामाजिक मान्यता:- लोकगीतों में स्त्री के मातृत्व को अत्यंत पवित्र, त्यागमयी और गौरवपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया गया है। समाज में मां बनना स्त्री के जीवन का सबसे बड़ा धर्म और उद्देश्य माना गया है, और लोकगीतों में यह धारणा बार-बार उभरती है। विवाह के बाद संतान प्राप्ति को स्त्री के सम्मान, प्रतिष्ठा और पूर्णता से जोड़ा जाता है। कई लोकगीतों में संतानहीनता को दुर्भाग्य के रूप में दिखाया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक मान्यताओं के अनुसार स्त्री का मां बनना अनिवार्य माना जाता है। एक प्रसिद्ध भोजपुरी लोकगीत में स्त्री की यह आकांक्षा झलकती है:- "मइया मोरी, कब होईं नंदनवती, कोखिया सुनी हो गईल बियाबान।"(प्रभा सक्सेना, नारी विमर्श और लोक साहित्य) (अर्थात् – हे मां! कब मैं पुत्रवती बनूंगी, मेरी कोख सुनसान हो गई है।) यह गीत स्त्री की उस पीड़ा को दर्शाता है जो समाज द्वारा संतान की अपेक्षा के कारण अनुभव होती है। लोकगीतों में गर्भावस्था की पीड़ा, संतान की कामना और मातृत्व की महिमा के साथ-साथ स्त्री की सामाजिक पहचान का भी मार्मिक

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

चित्रण मिलता है। इस प्रकार लोकगीतों के माध्यम से स्त्री के मां बनने की प्रक्रिया को न केवल एक जैविक अनुभव, बल्कि सामाजिक दायित्व और सांस्कृतिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

4.6 बच्चों के पालन-पोषण के गीतों में माँ का स्नेह:-लोकगीतों में मां का स्नेह, ममता और त्याग बच्चों के पालन-पोषण में अत्यंत भावुकता के साथ चित्रित होता है। जब बच्चा रोता है, बीमार होता है या सोने नहीं देता, तब मां अपने वात्सल्य से भरे स्वर में लोरी गाकर उसे सुलाती है। इन गीतों में उसकी थकान, चिंता और स्नेह एक साथ दिखाई देते हैं। मां न केवल शरीर से बच्चे की सेवा करती है, बल्कि अपने मन से उसे हर सुख देने का प्रयास करती है। लोरियों और झूला गीतों के माध्यम से मां अपने बच्चे को अच्छे संस्कार, धर्म, प्रकृति और भविष्य की कल्पनाओं से जोड़ती है। एक प्रचलित अवधी लोरी में मां का स्नेह झलकता है:- "झूला झुलईबैं ललना के, नींदिया रानी बोलावैं, हाथ में कंगना, पांव में पायल, रुनझुन बाजै लोरियावैं।"(मीरा ठाकुर, हिमाचल के लोकगीतों में नारी) (अर्थ: मैं अपने ललना को झूला झुलाऊंगी, नींद की रानी उसे बुला रही है; हाथ में कंगन, पांव में पायल, रुनझुन की लोरी गूंज रही है।) इस गीत में मां के मन का स्नेह, अपने बच्चे के प्रति गहरी आत्मीयता और प्रेम भाव स्पष्ट झलकता है। लोकगीतों के ये स्वर मातृत्व की मधुरतम अभिव्यक्ति हैं, जो पीढ़ियों तक संस्कृति का हिस्सा बने रहते हैं।

4.7 श्रम करते हुए स्त्री का संघर्ष:- लोकगीतों में स्त्री के श्रमशील जीवन का अत्यंत सजीव और यथार्थ चित्रण मिलता है। खेतों में काम करती हुई, जंगल से लकड़ी लाती हुई, पानी भरती, चूल्हा-चौका संभालती और घर-बाहर दोनों का भार उठाती स्त्री लोकगीतों में मेहनती, सहनशील और आत्मबल से परिपूर्ण दिखाई देती है। उसका श्रम केवल शारीरिक नहीं, बल्कि भावनात्मक और सामाजिक भी होता है। इन गीतों में स्त्रियाँ काम करते-करते अपने दुःख, आकांक्षाएँ और सपनों को स्वर देती हैं। गीत उनके श्रम का साथी बन जाते हैं, जिनसे वे अपनी पीड़ा भी हल्की करती हैं और आत्मबल भी पाती हैं। एक प्रचलित बुंदेली लोकगीत में खेत में काम करती स्त्री कहती है:- "कबहुँ ना आराम मिलै मोहे, दिन भर खेतवा में खटती, साँझ पराय की बाट निहारी, अंखिया निंदिया तरसती।"(सुधा सिंह, लोकगीतों में नारी चेतना)(अर्थ: मुझे कभी आराम नहीं मिलता, दिनभर खेतों में काम करती हूँ, संध्या को पति की राह देखती हूँ, और आंखें नींद को तरसती हैं।) यह गीत श्रमशील स्त्री की व्यथा और उसका मानसिक बोझ दोनों दर्शाता है। लोकगीतों में स्त्री का श्रम केवल आर्थिक योगदान नहीं, बल्कि उसकी जीवन यात्रा का अभिन्न हिस्सा है, जिसे गीतों ने सहजता और सच्चाई से स्वर दिया है।

5. नारी की सामाजिक स्थिति :- लोकगीत किसी समाज की आत्मा होते हैं, जिनमें उस समाज की संस्कृति, परंपरा और भावनाएँ अभिव्यक्त होती हैं। लोकगीतों में स्त्री की सामाजिक स्थिति का चित्रण गहराई, संवेदना और यथार्थ के साथ हुआ है। वे यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री जीवन का अधिकांश भाग सामाजिक बंधनों, पारिवारिक जिम्मेदारियों और परंपरागत भूमिकाओं में बंधा रहता है। स्त्री को लोकगीतों में कभी बेटी, बहन, पत्नी, बहू और मां के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हर भूमिका में उससे त्याग, सहनशीलता, मर्यादा और कर्तव्य की अपेक्षा की जाती है। विवाह के समय उसका मायके से विदा होना, ससुराल में उसका संघर्ष, पति की सेवा और सास-ससुर की आज्ञा पालन – ये सब स्त्री की सामाजिक स्थिति को दर्शाते हैं, जहाँ उसका अस्तित्व दूसरों के इर्द-गिर्द परिभाषित होता है। "बाबुल मोरे, बहियाँ छुड़ायो, डोलिया ले जाय पिया के देस।"(विद्यासागर, हिंदी लोक गीत कोश) (अर्थ: हे पिता! मेरी बाहें छुड़ाई जा रही हैं, पालकी मुझे ससुराल ले जा रही है।) यह गीत बेटी के विदाई की पीड़ा को दर्शाते हुए उसकी सामाजिक अस्थिरता और परनिर्भरता को उजागर करता है। स्त्री का सामाजिक स्थान इतना सीमित था कि संतान न होने पर उसे अपशगुनी तक कहा जाता था, और पुत्र की प्राप्ति को उसका सौभाग्य माना जाता था। साथ ही, कुछ लोकगीतों में स्त्री के भीतर उपजे विरोध, असंतोष और स्वतंत्रता की चाह की सूक्ष्म झलक भी मिलती है, जो सामाजिक परिवर्तन की संभावना को इंगित करती है। इस प्रकार लोकगीतों में स्त्री की सामाजिक स्थिति एक ओर परंपरागत सीमाओं से बंधी हुई है, तो दूसरी ओर भावनात्मक गहराई और आंतरिक शक्ति की प्रतीक भी है।

6. स्त्री विमर्श और लोकगीत:- स्त्री विमर्श का उद्देश्य स्त्रियों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति को समझना तथा उनके अधिकारों, अनुभवों और संघर्षों को स्वर देना है। लोकगीत, जो जनमानस की सामूहिक चेतना और परंपरा से उपजे हैं,

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

स्त्री विमर्श का मौलिक और महत्वपूर्ण स्रोत बनते हैं। इन गीतों में स्त्री के जीवन का यथार्थ – उसका प्रेम, कहनेपीड़ा, श्रम, संघर्ष, मातृत्व, विवाह और सामाजिक बंधनों से जुड़ा प्रत्येक पक्ष सजीव रूप में उभरता है। लोकगीतों में स्त्री की वाणी लोकभाषा में होते हुए भी अत्यंत प्रभावशाली है। वह गीतों के माध्यम से अपने भीतर के दुःख, असंतोष, प्रेम और आकांक्षाओं को व्यक्त करती है। विशेषकर विदाई गीत, झूला गीत, लोरी, और कजरी आदि में स्त्री की संवेदनाएँ और सामाजिक स्थान स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं।"ना जइह पिया परदेस, मोरे मनवा न लागे..."(मोहनलाल वियोगी, भारतीय लोक साहित्य और नारी) (अर्थ – हे पिया! परदेश मत जाओ, मेरा मन नहीं लग रहा है।) यह गीत स्त्री की भावनात्मक निर्भरता और अकेलेपन की पीड़ा को दर्शाता है। इस प्रकार लोकगीत स्त्री विमर्श को लोक चेतना के धरातल पर प्रस्तुत करते हैं, जहाँ स्त्री की आवाज पारंपरिक ढांचों में बंधी होकर भी अपनी अस्मिता और अस्तित्व की बात करती है।

7. स्त्री की आवाज़ का लोक रूप:- लोकगीतों में स्त्री की आवाज उसकी पीड़ा, प्रेम, संघर्ष और संवेदना की सजीव अभिव्यक्ति है। ये गीत स्त्री के मन की वाणी हैं, जिनमें वह समाज की मर्यादाओं और पारिवारिक बंधनों के भीतर रहकर भी अपनी बात का माध्यम खोजती है। लोकगीत स्त्री को एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं जहाँ वह बिना विरोध के, सांस्कृतिक स्वीकृति के साथ, अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकती है। स्त्री की यह आवाज कभी बेटी बनकर पिता से बिछड़ने का दुःख कहती है, कभी पत्नी बनकर विरह वेदना झेलती है, तो कभी मां बनकर ममता के स्वर गाती है। इन गीतों में उसका लोक रूप विविध रंगों में उभरता है —वह एक श्रमशील, संवेदनशील, ममतामयी और सहनशील व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। "पानी भरन गईली सजनी, अंखियन में लोर भराय.."(मीरा ठाकुर, हिमाचल के लोकगीतों में नारी) (अर्थ: पानी भरने गई सखी की आंखों में आँसू भर आए।) यह पंक्ति स्त्री के मन के भावों को साधारण कामकाज से जोड़ते हुए गहराई से अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार लोकगीतों में स्त्री की आवाज लोक संस्कृति की आत्मा बन जाती है, जो समाज की चुप्पियों में अपनी भावनाओं को गीतों के माध्यम से मुखर करती है और अपने लोक रूप में जीवन का यथार्थ जीती है।

8. नारीवादी दृष्टिकोण से पुनर्पाठ की संभावनाएँ:- लोकगीतों को यदि पारंपरिक दृष्टि से देखा जाए, तो वे स्त्री की मर्यादा, त्याग और कर्तव्य को glorify करते हैं, जिससे वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पोषक प्रतीत होते हैं। लेकिन आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोण से इन लोकगीतों का पुनर्पाठ किया जाए, तो इनमें स्त्री के आत्मबोध, स्वतंत्र इच्छाओं और विरोध की गूंज भी सुनाई देती है। लोकगीतों में स्त्री अपनी पीड़ा, अकेलापन, मेहनत और सामाजिक बंधनों के विरुद्ध असहाय होते हुए भी भावनात्मक प्रतिरोध प्रकट करती है। यही प्रतिरोध नारीवाद के बीज हैं, जिन्हें पुनर्पाठ के माध्यम से समझा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप:-"ससुरारी में न नीके लागे, मोरे बाबुल के अंगना भाए.."(रमेश दुबे, स्त्री और लोक संस्कृति) – ससुराल अच्छा नहीं लगता, मुझे तो पिता का आँगन ही भाता है।) यह पंक्ति स्त्री की उस मानसिक अवस्था को दर्शाती है जहाँ वह ससुराल की व्यवस्था से असंतुष्ट है और अपनी पसंद को स्वर देती है। इस प्रकार, लोकगीतों में स्त्री का जो मौन विरोध, आंतरिक पीड़ा और असहमति छिपी है, वह नारीवादी दृष्टिकोण से पुनर्पाठ किए जाने पर नए अर्थों और विमर्शों की संभावनाएँ खोलती है, जो स्त्री की चेतना और अस्मिता को नए संदर्भों में उजागर करते हैं।

9. लोकगीतों को स्त्री साहित्य की मौलिक निधि मानना:- लोकगीतों को स्त्री साहित्य की मौलिक निधि माना जाता है क्योंकि इनमें स्त्री का जीवन, संवेदना, अनुभव और संघर्ष अपने सबसे प्रामाणिक और स्वाभाविक रूप में व्यक्त होता है। ये गीत किसी एक लेखक द्वारा नहीं, बल्कि सामूहिक स्मृति और पीढ़ियों की स्त्री चेतना के द्वारा रचे गए हैं। उनमें स्त्री की अस्मिता, भावनात्मक जटिलताएँ, पारिवारिक संबंध, सामाजिक दबाव और आत्मिक वेदनाएँ अभिव्यक्त होती हैं। लोकगीतों में स्त्री न तो केवल एक पात्र होती है और न ही किसी कथा की छाया – वह स्वयं स्वर बनकर बोलती है। उसका दुख, प्रेम, आशा, श्रम और विरोध सब कुछ गीतों के माध्यम से सामने आता है। यही विशेषता लोकगीतों को स्त्री साहित्य की मौलिक निधि बनाती है। उदाहरणस्वरूप:- "चुनरी में कइसे रखूं लाज, ससुराल में झूठे रीति..."(रमेश दुबे, स्त्री और लोक संस्कृति) (अर्थ–मैं अपनी इज्जत कैसे बचाऊँ, ससुराल की झूठी परंपराओं में।) यह पंक्ति स्त्री की सामाजिक विवशता और आंतरिक द्वंद्व को उजागर करती है। इस प्रकार, लोकगीत केवल सांस्कृतिक धरोहर

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 13-Issue 02, (April-June 2025)

नहीं, बल्कि स्त्री की मौन भाषा, उसकी आत्मकथा और जीवंत साहित्यिक विरासत भी हैं, जो उसे स्त्री साहित्य की अनमोल निधि बनाते हैं।

निष्कर्ष

हिंदी लोकगीतों में स्त्री जीवन का चित्रण केवल भावनात्मक या कलात्मक नहीं, अपितु सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में भी महत्वपूर्ण है। ये गीत स्त्री के जीवन-संघर्ष, सामाजिक संरचनाओं, उसकी पीड़ा, सृजन और संप्रेषण की शक्तियों को अभिव्यक्त करते हैं। कुछ लोकगीतों में स्त्री की वाणी में व्यंग्य और प्रतिरोध की शक्ति भी प्रकट होती है। वह सामाजिक रूढ़ियों, पति की उपेक्षा, या पुरुष प्रधानता पर कटाक्ष करती है। इस प्रकार लोकगीत स्त्री के आत्मस्वर का माध्यम बन जाते हैं, जो अन्यथा पितृसत्तात्मक समाज में दबा दिया जाता है। स्त्री के लोकबोध और आत्मबोध को समझने का एक प्रभावशाली माध्यम ये लोकगीत हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वर्मा, रामकुमार। हिंदी लोकगीतों में नारी। इलाहाबाद: साहित्य भवन, 1985।
2. पाण्डेय, आशा। लोक साहित्य और स्त्री विमर्श। दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2002।
3. वियोगी, मोहनलाल महतो। भारतीय लोक साहित्य और नारी। दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1998।
4. सिंह, सुधा। लोकगीतों में नारी चेतना। दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2007।
5. मेहरा, नरेश। हिंदी लोक साहित्य: स्वरूप और संरचना। दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 1994।
6. सक्सेना, प्रभा। नारी विमर्श और लोक साहित्य। जयपुर: साहित्यागार, 2010।
7. ठाकुर, मीरा। हिमाचल के लोकगीतों में नारी। शिमला: हिमाचल लोकसंस्कृति अकादमी, 2005।
8. दुबे, रमेश (संपा.)। स्त्री और लोक संस्कृति। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2003।
9. सागर, विद्या। हिंदी लोकगीत कोश। आगरा: केंद्रीय हिंदी संस्थान, 1990।
10. किश्वर, मधु पूर्णिमा। नारी विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य। दिल्ली: ज्ञान गंगा, 2012।